ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 174-176

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-I, Issues-19, YEAR- March-2021

सात्विकाभिनय एवं चाक्षुषयज्ञ (यजुर्वेद)

डॉ0 निहारिका चतुर्वेदी E-mail: mishraamita.edu@gmail-com

Received- 10.02.2021, Revised- 14.02.2021, Accepted - 19.02.2021

सारांश : ***प्रस्तुत शोध पत्र में अभिनय एवं अनुकरण के उभयपक्षों का विश्लेषण किया गया है। यह बताने का प्रयास किया गया है कि आदर्श विहीन अभिनय महत्वपूर्ण नहीं होता है। सात्विक शब्द के सार्थक अर्थ बताने का प्रयास भी इस शोध पत्र में किया गया है। यजुर्वेद में सात्विक अभिनय के स्वरूप का विश्लेषण भी किया गया है।***

नाट्य–कला में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व अभिनय को स्वीकारा गया है, क्योंकि नाटक रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत की गयी जीवन्त कहानी ही है। सामाजिक इस प्रस्तुति से नयनाभिराम अभिनय देखते हैं। सम्भवतः इसीलिये नाटक को चाक्षुष–यज्ञ भी कहा जाता है। पात्रों का अभिनय–कौशल, रंगमंच और सामाजिकों की प्रतिक्रियाओं को अन्विति ही किसी नाटक की सफलता का प्रमाण मानी जाती है। अभिनय के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य–समीक्षकों में मतैक्य है। दोनों ही नाटक की सफलता अभिनेता की दृष्टि से स्वीकारते है। यजुर्वेद में तो याज्ञिक कर्मों का ही आधिक्य है, अतैव यजुर्वेद को चाक्षुष यज्ञ के रूप में आंकलित किया जाये, तो अत्युक्ति न होगी।

कुंजीभूत शब्द– अभिनय, अनुकरण, आदर्श विहीन, सात्विक, सार्थक ।

अभिनय को सामान्यतः अनुकरणात्मक माना गया है, इसका एकमात्र कारण यह है कि प्रायः विद्वानों ने नाटक को मानव जीवन की अनुकृति के रूप में ही स्वीकृति प्रदान की है। आचार्य भरत ने त्रैलोक्य की घटनाओं के अनुकरण के रूप में नाटक को स्वीकारा है, परन्तु अनुकरण से उनका अभिप्राय जीवन की यथावत् प्रस्तुति से नहीं है। जीवन में वास्तविक स्वरूप की अनुकृति ही नाटक नहीं है, वरन् नाट्य–रचना द्वारा उसके अभिनय द्वारा जीवन के एक आदर्शमय स्वरूप की प्रतिष्ठा को जाती है। आदर्शविहोन अभिनय का अधिक महत्व नहीं है। यदि हम अभिनय के व्युत्पत्ति परक अर्थ पर विचार करें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि 'अभि' उपसर्ग नी, धातु और 'अच्' प्रत्यय को लेकर अभिनय शब्द की निर्मिति हुई है। 'अभि' का अर्थ है की और, 'नी' का अभिप्राय है ले जाना तथा 'अच्' का अर्थ है 'जाना'। इसका आशय होता है वह व्यापार जो हमें एक विशेष दिशा में ले जाने का प्रयास करता है और हम स्वेच्छया पूर्वक चल भी देते है। 'अभिनय' से तात्पर्य उस व्यापार से है जो हमें अपने चारों ओर के संसार से निकाल कर रंगमंच पर निर्मित हो रहे कलात्मक विश्व की ओर अग्रसर करता है। रंगमंच पर अभिनय–कौशल से जो कुछ सम्पन्न होता है हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वह हमारे नेत्रों के सम्मुख घटित हो रहा है। हम न केवल उसे देखते है, अपितु उसके सहभोक्ता भी हो जाते है।

अभिनय के संबंध में पाश्चात्य अवधारणा भी इसी प्रकार की है। भारतीय मनीषियों की भाँति पाश्चात्य विद्वान् अरस्तू ने भी नाट्य–कला को अनुकरणात्मक स्वीकारा है। अरस्तू ने तो समस्त कलाओं को अनुकरणमूलक ही माना है। अरस्तू ने आदर्शमूलक अनुकरण को ही स्वीकृति प्रदान की है। जीवन में आदर्श मय स्वरूप की प्रतिश्ठा को अरस्तू भी महत्वपूर्ण मानते हैं। 'वाल्मीकि रामायण' में इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि भरत की उद्विग्नता दूर करने हेतु कैकेय प्रदेश के नागरिकों ने नाटक के अभिनय का भी आयोजन किया था। 'नाट्य–शास्त्र' में भी नाट्कों के अभिहीन होने के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध होते है।

धार्मिक अवसर पर 'उत्तर राम चरितम्' नाटक के अभिनीत होने के प्रमाण भी मिलते है। भारतीय आचार्यों ने अभिनय के चार प्रकार वाचिक, आंगिक, आहार्य एवं सात्विक माने है।

सात्विक शब्द 'सत्व' से बना है। 'सत्व' का अर्थ किया गया है– 'सतो भावः' अर्थात् होने का भाव। इस शब्द का अन्यार्थ है, प्रकृति सहज, स्वभाव, जीवन शक्ति, चेतना आदि। सात्विक शब्द का अर्थ प्राकृतिक, स्वाभाविक जीवन में चेतना सम्पन्नादि है। सात्विक भाव से तात्पर्य उन भावों से है, जो अन्तः प्रेरणा से सहज रूप में स्वभावतः उत्पन्न होते है। इन सात्विक भावों को रस–निष्पत्ति में अनुभाव कहा गया है। अनुभाव से तात्पर्य आश्रयगत आलम्बन की उन चेष्टाओं से है, जिससे उसके मन में जाग्रत भाव की सामाजिक अनुभूति होती है। अनुभाव भी चार प्रकार के माने गये हैं– सात्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य। भरत के अनुसार सात्विक भावों की उत्पत्ति किसी विक्षिप्तावस्था में नही वरन् मन की एकाग्रता में होती है। आश्रय आलम्बन की सात्विक चेष्टाओं से मन में अन्तर्निहित स्थायी भाव का बोध होता है, और रंगमंच पर अभिनेता द्वारा उन्हीं भावों का प्रदर्शन सात्विक अभिनय कहलाता है।

आचार्यों ने अन्तः प्रेरणा से प्रसूत सात्विक भावों की संख्या आठ स्वीकारी है, यथा स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभग, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु और प्रलय। जीवन में हर्ष–विषाद, भय, लज्जा, विस्मय आदि कारणों से अंग संचालन में जो अवरोध उत्पन्न हो जाता है, उसे 'स्तम्भ' कहा गया है। इसी प्रकार क्रोध, भय, हर्ष, लज्जा, दुख, श्रम, ताप, आघात, व्यायाम आदि से शरीर के रोमों का उठ जाना 'रोमांच' है।

एसोसियेट प्रोफेसर– संस्कृत विभाग, एस.आर.के. (पी.जी.) कॉलेज फिरोजाबाद (उ0प्र0), भारत

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-I, Issues-19, YEAR- March-2021

भय, हर्ष, क्रोध, वार्धक्य, रोग, कण्ठ के सूखने आदि से वाणीका खण्डित होना 'स्वर भंग है। शीत, क्रोध, भय, श्रम, रोग, भय, हर्ष, क्रोध, जरादि के कारण शरीर का कम्पन 'वेपथु' है। क्रोध, तन्द्रा, भय, शोक, शीत, आनंद के आवेग आदि से नेत्रों में जल–बिन्दुओं का आना 'अश्रु है। अधिक परिश्रम, मूर्च्छा, भय, निंद्रा, गम्भीर आघात आदि से शरीर का चेष्टाहीन होना 'प्रलय' है।

सात्विक भावों के इन सभी प्रकार के प्रदर्शन में कुछ विशेष प्रकार की आंगिक चेष्टायें भी अपेक्षित होती है। 'स्तम्भ' के प्रदर्शन में विभिन्न अंगो को संज्ञाहीन, चेष्टाहीन एवं गतिहीन हो जाना चाहिए, लेकिन यह सब होते हुए भी जीवन का किसी न किसी प्रकार आभास होना आवश्यक है। 'स्वेद' के प्रदर्शन हेतु पंखा झलना, पसीना पोंछना, हवा के चलने का बोध कराना आवश्यक है। 'रोमांच' के प्रदर्शन के लिये रोमावली के खड़े होने का बोध विभिन्न अंगो के स्पन्दन द्वारा कराया जाना चाहिये। 'स्वर भंग' के अभिनय में कण्ठ–स्वर गद्गद् अथवा खण्डित हो जाना चाहिये। 'वेपथु' के लिए अंगों के प्रकम्पित होने का प्रदर्शन वांछनीय है। 'वैवर्ण्य' के प्रदर्शन हेतु मुख के वर्ण में परिवर्तन प्रदर्शित कराना चाहिये। 'अश्रु के अभिनय में अश्रुपात करना और उन्हें पोंछने का अभिनय करना चाहियें। 'सात्विक अभिनय' सायास और अनायास दो प्रकार का होता है। सात्विक भावों का अनायास प्रदर्शन तभी संभव है, जब अभिनेता मूलचरित्र के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर ले। इस सन्दर्भ में यह प्रसंग उल्लेख्यनीय है। रजत पट की वयोवृद्ध अभिनेत्री श्रीमती दुर्गा खोटे के नेत्रों में एक विशेष प्रसंग में आँसू आने थे, अतः उन्होनें गिलसरीन के प्रयोग पर बल दिया। इस पर निदेशक ने उनसे अपशब्द कहे, इस कारण उनके नेत्रों में आँसू आ गये।

सामधेनी को अग्नि में डालने के समय सात्विक अभिनय का नियोजन किया गया है। छठी सामधेनी के समय यदि कोई अपशब्द कहे तो उससे कहना चाहिये कि तूने अपने मन को अग्नि में डाल दिया है और यह अब तुझे पीड़ा प्रदान करेगा। इस पीड़ा के सात्विक अभिनय के अवसर पर व्यक्ति विक्षिप्त की भाँति इधर–उधर विचरण करेगा। विक्षिप्त मनः स्थिति में इधर–उधर गमन करना सात्विक अभिनय का परिचायक होगा। पीड़ा कभी–कभी प्राणघातिनी हो जाती है। आठवी, दसवीं और ग्यारहवीं सामधेनी को अग्नि में डालते समय कोई अपशब्द कहता है तो उससे कहना चाहिये, कि ऐसा आचरण करने से उसे पीड़ा होगी, और वह मर जायेगा। पीड़ा का मरणासन्न या मरणशील प्रभाव सात्विक अभिनय के अन्तर्गत ही आता है। वाणी की खिन्नता और तज्जन्य गर्भपात की प्रक्रिया को स्वर भंग के अन्तर्गत रखा जाता है, और इस प्रकार सात्विक अभिनय स्वतः सिद्ध हो जाता है। ग्रह के अधिष्ठात्रदेव के भयभीत होने और कंपित होने की शारीरिक क्रिया द्वारा भी यजुर्वेद में सात्विक अभिनय का संकेत किया गया है।

भय के प्रकम्पन को 'वेयथु' कहा जाता है, और यह सात्विक अभिनय का चिन्ह है। विष्णु द्वारा विभक्त होकर स्तम्भित होने का 'विस्मय'–भाव की प्रक्रिया माना जाएगा। 'हर्ष' 'विषाद' 'विस्मय' के कारण शारीरिक चेष्टाओं के अवरूद्ध हो जाने को 'स्तम्भ' कहते है, अतः एवं यहाँ सात्विक अभिनय ही है। सोम को कम्पित करने का उल्लेख 'वेपथु' के अन्तर्गत समाहित होने के कारण सात्विक अभिनय का परिचायक कहा जायेगा। हे सोम ! इधर–उधर घूमते हुए मेघों के पेट में जो जल है, उनकी वृष्टि हेतु तुम्हें कम्पायमान करता हूँ। हे सोम! संसार का कल्याण करने वाले शब्दवान् मेघों के उदर में जो जल है, उनकी वृष्टि के निमित्त मैं तुम्हें कंपित करता हूँ। हे सोम! जो उदर में जलयुक्त मेघ हमको अत्यन्त प्रसन्न करने वाले हैं, उनकी वृष्टि में निमित्त में तुम्हें कम्पायमान करता हूँ। निष्कर्षतः हम कह सकते है कि यजुर्वेद में सात्विक अभिनय के विधिव स्वरूप उपलब्ध होते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ सं0 7/79
2. European Theories of Drama. Page No. 6 Barrette H- Clark.
3. वादयन्ति तथा शन्ति लासयन्त्यपि चापरे। नाटकान्य परे स्मादुहास्यानि विवि धानि च।। वाल्मीकि रामायण' 2–69–4
4. स्वामिवियोगदन्यो.न्य विग्रहं स्पर्धया च भरतानाम्। या काश्च लक्ष्णीयं यथोत्थिता नाट्ययोजेतुं।। दैवोत्पन्न समर्थाः पताकोत्थिता वा बुधें लिखि तायाः। चास्ता नाट्य समुत्था ध्यात्म समुत्था तु लेख्याः स्युः।। प्रथमं समकर्ण गुणाः स्युत स्मिन् भरत प्रयोगेषु। कुशला सिद्धाधि के तु पताका समसिद्ध वा ज्ञेयानृपतेः।। 'नाट्य–शास्त्र' 27/71, 77, 78.
5. आद्य खलु भगवतः कालं प्रियानाथस्प या त्रायामार्थ– मिश्रान्वि ज्ञापयामिं। उत्रर राम चरितम्–पृ0सं0 3 भवभूति।
6. तत् त्वाभिनयस्यैव प्राधान्यमिति काश्यते। आङ्किो वचिकस्तद्वदाहार्य सात्वि को परः।। अभिनयदर्पण, 38.
7. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ0सं0 1063.
8. संस्कृत हिन्दी कोश पृ0सं0 1094.
9. संस्कृत, हिन्दी कोश पृ0सं0 1094.
10. अभिनय दर्पण, पृ0सं0 41.
11. यदिषष्ठयामनुव् व्याहरेत्। तं प्रति बूर्यानमनोवाएतदात्मनोडग्यानाबाध मनसाइडत्मन आर्त्रि मरिष्यसि मनो मुषिगृहीतो मोमुछश्चरिष्यसीति तथा हैव स्पात्। शतपथ ब्राह्मण 1–4–3–16.
12. या घष्टट्म्म् यामुव्याहरते। तं प्रति बूयान्मह्यं वा एत्त्प्राणं मात्मनो डग्नाबाधा मध्येने प्राणेनाडत्मक आर्त्रिमारिष्य त्युद्ण्ध माय

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-I, Issues-19, YEAR- March-2021

मरिष्य सीतितथा हैव स्पात्।।
शिश्नेनाड्डत्मन आर्तिमारिष्यसि क्लीबो भविष्यसीति।
सर्वेणाउड्त्मनाडडर्ति मारिष्यसि क्षिप्रेडमुं लोकमेष्यसीति तथा हैव स्यात्। शतयर्थब्राह्मण 1–4–3–18–19–21

13. गृहा मा बिभीत मा वेपदवमूर्जं विभ्रत एमासि। ऊर्ष्ण विभ्रद्धः सुमनाः सुमेधा गृहा नैमिममसा मोदमान्ः।। यजुर्वेद संहिता 3–4।

14. व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थं वृथिवीमभितो मयूखैः स्वाह।।

यजुर्वेद संहिता 5–16

15. व्रेशीनां वा यत्मन्ना धूनोमि कुकूननां त्वां पत्मन्नाधूनोमि। भन्दनाना त्वा पत्मन्ना धूनोमि मछिनतमाना त्वायत्मन्ना धूमोमि। मधुन्नमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि। यजुर्वेद संहित 8–48

*****